THE TIMES OF INDIA

*Date: 21-05-19*

# Odisha did an excellent job handling cyclone Fani's fallout, with Centre and state working in tandem

**Dharmendra Pradhan , [He is Union minister of Petroleum & Natural Gas; Skill Development & Entrepreneurship.]**

Not every crisis can be forestalled. Episodic throes of chaos are inherent in the nature of life. With close to 300 cyclones between 1800 and 2019 categorised as extremely severe to severe to moderate, including cyclone Fani, having battered Odisha, these cognitive nuggets are firmly entrenched in our collective wisdom.

Having said that, we are not and should not become passive inheritors of events. History is witness that great economic and cultural overhauls have been triggered due to tragic events – marking significant strides towards the greater well-being of the human race. Like Joseph Kennedy said, "The Chinese use two brush strokes to write the word 'crisis', one brush stroke stands for danger, the other for opportunity. In a crisis, be aware of the danger – but recognise the opportunity."

The Odia people have been dauntless in the face of danger, most recently exemplified during and in the aftermath of cyclone Fani that made landfall on May 3 packing winds with a sustained speed of 175-185 kmph, peaking at 205 kmph, which was only a few notches shy of being classified as a Category 5 hurricane – the deadliest that can hit the planet. To put matters in perspective, this was comparable to the 1999 Odisha super cyclone with wind speeds of 250 kmph, the worst cyclone of the 20th century, which experts say had the energy of 1,600 atomic bombs. The resilience of our people in the face of crisis has been recognised globally.

Prime Minister Narendra Modi visited Odisha for an aerial survey on May 6 and praised the people on seeing what they had withstood. "The way people of Odisha, the fishermen, complied with every instruction of the government is praiseworthy. They have done a great job, acts worth congratulating, because of which very few lives were lost," he said.

Over the past week and a half since the deadly cyclone, as I shuttled from the Cabinet secretary and PMO in New Delhi to some of the hardest hit villages along Odisha's coast, I noticed an unimpeachable resolve in people's eyes to reclaim their land, their lives. On my way to Balukhand, a wildlife haven ravaged by the cyclone, I stopped by the tehsildar's office in Nimapara. Even in this grim situation, I saw a sprightly young man, recently appointed to the office, assisting people with enviable enthusiasm and empathy where most would struggle merely to keep their head above the water.

However, resilience should not become an alibi for complacency. There are two modes of intervention – relief and development – with the repertoire of crisis management focussing on relief work that is guided by a sense of immediacy. Experts opine climate change will bring high intensity storms as a regular feature rather than a decadal one. This implies that the importance of the second mode of intervention – building disaster resilient soft and hard infrastructure – cannot be emphasised enough.

The Centre and the state are working in tandem to face emergency needs head on. Petroleum products, supply chain resumption and restoration work began almost immediately with dispensing of fuel restarting within 24 hours of Fani.

Life saving interventions should be reimagined to include livelihoods protection as part of the disaster management programme. Cyclone resilient housing is the call of the hour. All households living in kutcha and semi-pucca houses should be replaced with RCC ones. Electricity infrastructure suffers the most in cyclones – therefore, creating a disaster resilient power system to withstand wind velocity of 300 kmph is crucial.

Immediate livelihoods loss of farmers needs to be addressed. The state government ought to provide crop loans by persuading banks. The state in consultation with the ministry of agriculture may also replace all damaged coconut, areca nut, banana plantations, betel vines by providing quality saplings and appropriate technical guidance and subsidised credit through banks. Additionally, we have to draw up a protection and mitigation plan for wildlife, like for the devastated Balukhand sanctuary.

For a disaster prone state like Odisha, it is imperative to operate on a moral belief that building community resilience is a shared responsibility, one that also hinges on individual enterprise. Otherwise, rebuilding work will be a soulless and unsustainable process.

Civilisational progress has always been people driven – when the community demands organic change and strives to become the best version of itself. This crisis can be made into such a turning point.

---

बिज़नेस स्टैंडर्ड

*Date: 21-05-19*

# सही और गलत !

**संपादकीय**

वर्ष 2019 के आम चुनाव के नतीजे चाहे जो भी हों लेकिन यह कहना उचित होगा कि 36 दिन तक चली इस कवायद के बाद निर्वाचन आयोग का कद छोटा हुआ है। ये चुनाव आधिकारिक तौर पर निहायत अशिष्टता से भरे हुए थे और इस अवधि के दौरान सत्ताधारी दल और विपक्षी उम्मीदवारों द्वारा उल्लंघन के तमाम मामलों की शिकायत के बाद अब आयोग में आपसी असहमति सामने आ रही है। निर्वाचन आयुक्तों में से एक अशोक लवासा ने आदर्श आचार संहिता के उल्लंघन के मामलों की सुनवाई वाली बैठकों से खुद को अलग करते हुए कहा कि उनकी असहमति को दर्ज ही नहीं किया जा रहा। लवासा विवादों के केंद्र में रहे हैं। चुनाव प्रक्रिया के दौरान निर्वाचन आयोग ने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और भाजपा अध्यक्ष अमित शाह को चुनाव प्रचार के दौरान धर्म को बीच में लाने और बालाकोट हमले का जिक्र करने के पांच मामलों में क्लीनचिट दी। लवासा ने इन सभी अवसरों पर विरोध किया। आयोग के नियमों के मुताबिक बहुमत का निर्णय मान्य होता है और मुख्य निर्वाचन आयुक्त ने अपनी दलील में कहा था कि अल्पमत का निर्णय रिकॉर्ड नहीं किया जाएगा क्योंकि आचार संहिता के उल्लंघन का मामला अद्र्घ न्यायिक निर्णयों में नहीं आता है।

यह नजरिया चुनाव आयोग के ध्येय की रक्षा भले ही करता हो लेकिन यह उसकी आत्मा के अनुरूप नहीं है। यह एक खुला प्रश्न है कि क्या उसे प्रधानमंत्री की केदारनाथ यात्रा के प्रसारण के लिए सरकारी संसाधनों के इस्तेमाल की अनुमति देनी चाहिए थी जबकि अभी चुनाव प्रचार समाप्त ही हुआ था। अगर यह यात्रा प्रचार अभियान के दौरान हुई होती तो कोई मुद्दा नहीं बनता। यह बात भी आश्चर्य का सबब है कि उसने मोदी और ममता बनर्जी को बंगाल में पूरे दिन चुनाव प्रचार की अनुमति क्यों दी, इसके ठीक बाद उसने चुनावी हिंसा की निंदा करते हुए प्रचार की अवधि को ही कम कर दिया। हाल के वर्षों में सार्वजनिक बहस में आरोप प्रत्यारोप बढ़ गए हैं। यह कहना उचित होगा कि इससे पहले के चुनाव आयोग ने भी कोई बहुत अधिक प्रतिष्ठा नहीं अर्जित की है। न ही उनसे निपटने वाले राजनीतिक प्रतिष्ठान ने ऐसा कुछ किया है। वर्ष 2009 का उदाहरण हमारे सामने है जब मुख्य निर्वाचन आयुक्त एन गोपालस्वामी ने अपने सहयोगी नवीन चावला को हटाने की अनुशंसा की थी क्योंकि उन्हें कांग्रेस पार्टी के करीब माना जाता था।

वर्ष 2002 में मोदी ने गुजरात के मुख्यमंत्री के पद पर रहते हुए कहा था कि तत्कालीन मुख्य निर्वाचन आयुक्त जे एम लिंगदोह ने गुजरात में सांप्रदायिक दंगों के बाद जल्दी चुनाव कराने की उनकी मांग इसलिए ठुकरा दी थी क्योंकि वह ईसाई थे। सन 1989 में निर्वाचन आयोग को तीन सदस्यीय इसलिए बनाया गया क्योंकि तत्कालीन निर्वाचन आयुक्त आरवीएस पेरी शास्त्री ने कुछ ज्यादा ही स्वतंत्रता का परिचय दिया था। शास्त्री को उनके दौर में कुछ व्यापक चुनाव सुधार लाने के प्रयास के लिए भी जाना जाता है। सर्वोच्च न्यायालय ने इसे खारिज कर दिया था लेकिन 1993 में टीएन शेषन ने इसे दोबारा शुरू किया। उनकी स्वायत्तता ने तमाम राजनीतिक दलों को असहज कर दिया था। शास्त्री और शेषन दोनों ने चुनाव आयोग की निष्पक्षता के नए मानक तय किए। उस वक्त तक इसे एक अनुगामी संगठन की छवि हासिल थी लेकिन बाद में यह संस्थागत निष्पक्षता की मिसाल बन गया। यह प्रतिष्ठा 2000 के दशक में गायब होने लगी। इसकी कमजोरी का एक सिरा यह भी है कि यहां होने वाली नियुक्तियां वह कार्यपालिका करती है जिसकी निगरानी का काम आयोग के पास है। उस लिहाज से देखें तो लवासा ने सच बोलकर असाधारण साहस दिखाया है। यह दुखद है कि आयोग ने उनकी सुविचारित दृष्टि को नकार दिया है।

---

नईदुनिया

*Date: 21-05-19*

# 'सच्ची सरकार' तो जनता ही है

**महत्वपूर्ण मुद्दों पर यदि जनता की भी राय लेने की व्यवस्था बने तो हमारा लोकतंत्र और समृद्ध होगा।**

**डॉ. भरत झुनझुनवाला , (लेखक वरिष्ठ अर्थशास्त्री एवं आईआईएम, बेंगलुरु के पूर्व प्रोफेसर हैं)**

आधुनिक लोकतंत्र की शुरुआत आज से 2000 वर्ष पूर्व यूनान में हुई थी। वहां पर छोटे-छोटे स्वतंत्र शहर होते थे। इन शहरी राज्यों में सभी नागरिक एकजुट होकर निर्णय करते थे कि किस प्रकार के नियम समाज में लागू होंगे। समय क्रम में ये शहर और बड़े होते गए और यह संभव नहीं रह गया कि दस हजार या एक लाख व्यक्ति लामबंद होकर किसी मुद्दे पर चर्चा करके निर्णय ले सकें। यही समस्या आधुनिक समय में लोकतांत्रिक व्यवस्था के समक्ष उपस्थित हो गई। जनता की तादाद बढ़ने लगी, इसलिए सबका मिलकर निर्णय लेना संभव नहीं रह गया। तब प्रतिनिधि के चुनाव की व्यवस्था की गई। सोचा गया कि लोग अपने प्रतिनिधि का चयन करेंगे और प्रतिनिधियों द्वारा उनके विचारों के अनुसार संसद में मतदान करके सरकार द्वारा जनता की इच्छानुसार नियम बनाए जाएंगे, लेकिन देखा गया है कि चयनित प्रतिनिधि जनता की इच्छानुसार मतदान करने के स्थान पर धन अथवा पद के लोभ में जनता की इच्छाओं के विपरीत मतदान करते हैं। इस संबंध में मैंने ह्विप व्यवस्था की चर्चा की थी। मैं इसी समस्या का दूसरा पक्ष प्रस्तुत करना चाहता हूं।

स्विट्जरलैंड में पिछली सदी में पुरातन यूनान की तरह सीधे लोकतंत्र की व्यवस्था थी। हर जिले के नागरिक एकत्रित होकर नियमों पर चर्चा करते थे। जब स्विट्जरलैंड के छोटे-छोटे प्रांतों ने मिलकर महासंघ बनाया, तब यह व्यवस्था आगे नहीं चल सकी। वहां भी प्रतिनिधि की व्यवस्था की गई। प्रतिनिधि द्वारा जनता की इच्छाओं के विपरीत मतदान करने को रोकने के लिए साथ-साथ सीधे जनमत संग्रह की व्यवस्था की गई। जब संसद में किसी मुद्दे पर सहमति न बन सके अथवा संसद को संदेह हो कि जनता के हित में उनका निर्णय होगा या नहीं, अथवा किसी निर्णय का जनता पर दीर्घकालीन प्रभाव हो तो संसद द्वारा सीधे जनमत संग्रह का आदेश दिया जा सकता है। जैसे यदि संसद को संदेह हो कि विदेशी निवेश जनता के लिए अच्छा होगा या नहीं तो जनता से पूछा जा सकता है कि विदेशी निवेश को स्वीकृति दी जानी चाहिए अथवा नहीं। जनमत संग्रह के परिणाम को मानने के लिए संसद बाध्य नहीं होती, परंतु इसके विपरीत जाना कठिन होता है। इसी प्रकार की व्यवस्था अमेरिका में की गई। अमेरिका में पाया गया कि चयनित प्रतिनिधि विशेष लोगों के हितों के अनुसार मतदान करने लगते हैं। इसलिए अमेरिका के 50 में से 49 प्रांतों ने व्यवस्था दी कि विशेष परिस्थितियों में जनमत का सीधे संग्रह कराया जा सकता है। कई राज्यों में जनमत संग्रह के आधार पर किसी जनप्रतिनिधि की सदस्यता तक निरस्त की जा सकती है।

हाल में इंग्लैंड में जनमत संग्रह का विशेष अवसर उपस्थित हुआ। प्रश्न था कि इंग्लैंड को यूरोपीय संघ में बने रहना चाहिए अथवा इससे बाहर आ जाना चाहिए। इस मुद्दे पर कंजरवेटिव पार्टी के नेता और पूर्व प्रधानमंत्री डेविड कैमरन ने जनमत संग्रह कराने का निर्णय लिया। उन्होंने जनता के सामने प्रस्ताव पेश किया कि इंग्लैंड को यूरोपीय संघ का सदस्य बने रहना चाहिए, लेकिन जनता ने उनके प्रस्ताव के विरोध में मतदान किया। आज इंग्लैंड को यूरोपीय संघ से बाहर करने के लिए कंजरवेटिव पार्टी को अपने ही प्रस्ताव के विरोध में जुटना पड़ा है। इसमें अभी भी तमाम पेंच फंसे हुए हैं। अपने देश में भी चयनित प्रतिनिधियों द्वारा जनविरोधी निर्णय लिए जाने पर चर्चा हुई है। वाजपेयी सरकार ने संविधान समीक्षा आयोग बनाया था। उसने अपनी रपट में कहा था कि प्रमुख विषयों जैसे विश्व व्यापार संगठन की सदस्यता पर सरकार को सीधे निर्णय लेने का अधिकार नहीं होना चाहिए। यहां पर यह बता दें कि वर्ष 1985 में विश्व व्यापार संगठन संधि पर दस्तखत करते समय सरकार द्वारा संसद की सहमति भी नहीं ली गई थी। संविधान समीक्षा आयोग ने सुझाव दिया था कि सरकार द्वारा ऐसे मुद्दों पर संसद को विश्वास में लिए बिना दस्तखत नहीं करने चाहिए। यद्यपि आयोग ने जनमत संग्रह का सुझाव नहीं दिया था, किंतु उसकी रपट से यह बात स्पष्ट झलकती है कि आयोग को इसकी चिंता थी कि सरकार द्वारा जनता की इच्छा के विपरीत निर्णय लेने पर रोक होनी चाहिए।

लोकतंत्र का मूल आधार है कि जनता प्रतिनिधियों के माध्यम से स्वयं अपने पर शासन करे, लेकिन जब प्रतिनिधि जनता की इच्छा का सम्मान न करें तो फिर जनता का अपने ऊपर स्वशासन केवल दिखावा ही रह जाता है। वास्तविक शासन उन लोगों का हो जाता है, जिनके इशारे पर प्रतिनिधि संसद में मतदान करते हैं। इस समस्या का हल यह हो सकता है कि ह्विप की व्यवस्था को अविश्वास प्रस्ताव तक सीमित किया जाए। इसका दूसरा उपाय यह है कि हम भी जनता द्वारा जनमत संग्रह की व्यवस्था को लागू करें जैसे स्विट्जरलैंड, अमेरिका तथा ब्रिटेन में किया गया है। हम व्यवस्था कर सकते हैं कि प्रत्येक वर्ष किसी मुद्दे पर जनमत संग्रह कराया जाए, जिसमें देश की समस्त जनता किसी नीति के पक्ष अथवा विपक्ष में अपना मत जाहिर करे। जैसे 'भूमि अधिग्रहण कानून को नरम करना अथवा और सख्त करना यह प्रश्न जनता से पूछा जा सकता है। प्रश्न का निर्माण विपक्ष द्वारा किया जाए और चुनाव आयोग का कार्य हो कि वह स्वतंत्र रूप से उस मुद्दे पर समूचे देश में जनमत संग्रह कराए। हम यह व्यवस्था भी कर सकते हैं कि दो जनमत संग्रहों में यदि सत्तारूढ़ पार्टी हार जाती है तो नए चुनाव कराए जाएं। ऐसा करने से लाभ होगा कि प्रमुख मुद्दों पर जनता सीधे अपना विचार प्रकट कर सकेगी। सीधे जनमत संग्रह के विरोध में एक तर्क यह दिया जाता है कि जनता को विषयों का पर्याप्त ज्ञान नहीं होता है। इंग्लैंड में ब्रेक्जिट को लागू करने में कई मुश्किलें आ रही हैं। इसलिए कहा जा रहा है कि ऐसे मुद्दों को जनता पर नहीं छोड़ना चहिए, लेकिन शिक्षा का फैलाव हुआ है और खासकर इंटरनेट के माध्यम से तमाम लोगों तक सूचनाएं पहुंच रही हैं। ऐसे में यह सोचना कि जनता मुद्दों को सही रूप से समझ नहीं सकेगी और गलत निर्णय करेगी, यह उचित नहीं दिखता है। यदि कोई गलत निर्णय ले भी ले तो तमाम सही निर्णयों के लाभ को भी देखना चाहिए।

यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जनमत संग्रह हर समस्या का पूर्ण समाधान नहीं है। हाल में कोलंबिया में शांति प्रस्ताव के विरोध में वहां की जनता ने मतदान किया। थाईलैंड में लोकतंत्र को सीमित करने वाले संविधान को जनता ने स्वीकार किया। यह पूरी तरह संभव है कि जनमत संग्रह में जनता अपनी नासमझी के कारण गलत निर्णय ले, लेकिन मेरा मानना है कि यदि मुद्दा विपक्ष द्वारा प्रस्तुत किया जाता है, तब जनता के सामने पक्ष और विपक्ष दोनों प्रस्तुत होंगे और जनता का जो भी निर्णय हो, उसे सही मानना चाहिए। सीधे जनमत की व्यवस्था का क्या रूप हो, इस पर चर्चा हो सकती है, लेकिन लोकतंत्र को बचाने के लिए किसी रूप में जनमत संग्रह की व्यवस्था को लागू करना आवश्यक दिखता है।

---

THE HINDU

*Date: 20-05-19*

# The task of restoring democracy

***Civil society has a big role to play in restoring institutions that form the bulwark of democracy***

**G.N. Devy is a thinker and cultural activist**

On April 24, an ultra-right wing Italian group assembled in Milan to resurrect Benito Mussolini. The day and the place were both symbolically significant. April 25 is celebrated as Liberation Day in Italy, and it was at the Piazzale Loreto in central Milan that Mussolini's body was hung upside down on April 28, 1945. Pictures of the people in the group showed them holding with one hand a big banner that read 'Honour to Mussolini', while their other hand was raised in the old fascist style of salutation to his memory.

This story is not dissimilar to how an ultra-right wing group recreated Mahatma Gandhi's assassination on his death anniversary this year. Not dissimilar, too, to how a Lok Sabha election candidate bragged about the 'patriotism' of Gandhi's killer. As we are seeing now, the memory of the assassin of the Mahatma is being brought to the surface by the ultra-right to take pride in what was clearly a shameful and sorrowful event in India's history.

## The dark clouds of fascism

These instances send shivers down the spine of all those who shun violence. All over the world, decent human beings have spent the last seven decades thinking that fascism is a thing of the past and that the crimes against humanity that fascism consciously perpetrated will always be seen as the most heinous among brutal crimes. But that confidence is now becoming a precious luxury. This year, for instance, in Italy, the right wing Deputy Prime Minister Matteo Salvini has proposed to put up a joint right wing front for contesting the upcoming election to the European Parliament. The ominous possibility of the ultras in Austria, Germany, France, and some 'new' European countries confronts Europe in the face.

The Italian development is not entirely unrelated to the outcome of the elections in Spain. While the Socialists won the election, the right wing continues to play an important role in the formation of the new government there. The Spanish election results bring to mind a term that has dominated the Indian media for the last few months — a hung Parliament. In Spain, the Socialist party (PSOE) has won 123 seats and the anti-capitalist Podemos, which has indicated a readiness to work in a PSOE-led coalition, has won 42, which makes it a total of 165. This is 11 seats short of a clear majority. The traditional conservative People's Party has got 66 seats; their stronger shade, the centre-right Citizens party has won 57 seats; and the far-right Vox, the type that wants to resurrect Mussolini, has won 24 seats.

The dark clouds of openly declared fascism have cast a large shadow over Europe. The history of Hitler's rule tells us how he befriended the rich industrial class and destroyed the German Parliament. His use of capital, science and technology for creating an unprecedented torture machine for Jews, homosexuals, gypsies, communists and all his critics was based on the capacities available in his time. Today, these capacities have increased beyond one's imagination. The technological aids for deeply invasive surveillance that the state has at its disposal are so advanced that the idea of individual freedom and non-conformist thought will have no space left if the ideas of the ultra-right were to capture power.

The Lok Sabha election has come to an end and in a few days we will know what the ballot box has in store for us. Given India's place in the world, there is no doubt that all political parties in Europe will be keenly watching the outcome of the Indian election. Is it a small irony that a powerful bloc of nations, the BRICS, that was seen as being on an impressive and economic rise some years ago has changed so much? Brazil, Russia and China today have totalitarian and anti-people regimes, and India has obscurantist theological outfits openly claiming space in the decision-making process.

## Challenges for the new regime

After the election results are announced, the new government will have many challenges waiting for its attention. These include jobless growth and a record drop in employment rates, deep agrarian distress, an education system that has completely eroded, caste discrimination and the continuing harassment of women. All these are real issues even if the government pretends they do not exist.

The most important, though, is the serious loss of credibility of democratic institutions. The Central Bureau of Investigation and the gubernatorial offices have declined beyond repair. The Election Commission, the judiciary and the Comptroller and Auditor General can still be rebuilt. Many other institutions such as the University Grants Commission, the national academies, scientific institutions and data-gathering mechanisms will require not just first-aid care but serious cure. The TRP demon will hardly permit redemption of the electronic media, but traditional print journalism and online journalism will require greater self-reflection and self-regulation. No government will be able to cope with these challenges by itself unless many active sections of the citizenry participate in the task of restoring democracy.

The task I suggest will be difficult for the country to accomplish even if a non-right government is formed, no matter of what composition. Over the last seven decades, democracy has been protected by civil society, which has critiqued the faults of various regimes. This time, civil society will have to rush to the assistance of the government in restoring institutions that form the bulwark of democracy. This task will be enormously daunting if a right wing government comes to power. Curbing its jingoism and propaganda juggernaut will require heroic efforts. To keep vigil on complicit office-holders in key institutions will become full-time voluntary work for political opponents and non-party groups.

Yet, if many of us do not do this, we will provide an unintended impetus to the ultra-right. It is true that democracy has erred often. Yet, it is also true that democracy solidly stood the world's guarantee for averting wars. Democracy has erred, but it has not failed us. The idea of democracy today is a pale shadow of what it was imagined to be. U.S. President Donald Trump's vision for the country as a place only for Americans and Prime Minister Narendra Modi's imagining of India as a place for only those who agree with him are versions of democracy that have reduced their respective Constitutions to a forgotten baggage. Indians must hold vigil in both good and bad times. We will soon know if we can.